सत्यमेव जयते

अधिवक्ता अधिनियम, 1961
के अधीन
अनुशासन अधिकारिता के विषय में
भारत के विधि आयोग
की
पचहत्तरवीं रिपोर्ट

(अक्तूबर, 1978)

प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय, नीलोखेड़ी द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली—110054 द्वारा प्रकाशित।

मूल्य : देश में   विदेश में

T-8.2

अ०आ०सं०एफ 2(17)/78—[illegible]

अध्यक्ष,
विधि आयोग,
भारत सरकार,
नई दिल्ली, 30 अक्तूबर, 1978

प्रिय मंत्री महोदय,

मैं आपको अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अधीन अनुशासन अधिकारिता के विषय में भारत के विधि आयोग की पचहत्तरवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

जैसा कि रिपोर्ट के पहले पैरे में उल्लेख किया गया है भारत सरकार के अनुरोध पर विधि आयोग ने इस विषय पर विचार किया था।

मैं यहां यह भी उल्लेख करना चाहता हूं कि इस रिपोर्ट को तैयार करने में आयोग के सदस्य-सचिव श्री पी० एम० बक्शी से हमें जो बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है वह अत्यन्त सराहनीय है।

आपका

ह०
(एच० आर० खन्ना)

माननीय श्री शान्ति भूषण,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली—110001

5-82

विषय सूची

पैरा — विषय

I—प्रारम्भिक

1. [illegible]।

2. पूर्ववृत्त जिससे यह पता चलता है कि अधिनियम बहुत विलम्ब तथा सोच विचार के पश्चात् बनाया गया।

II—वर्तमान विधि

3. वर्तमान विधि—भारतीय विधिज्ञ परिषदें।

4,5,6. भारतीय विधिज्ञ परिषद्।

III—पूर्ववृत्त

7. पूर्ववृत्त—1879 का अधिनियम।

8. 1926 का अधिनियम।

9. अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति।

10. चौदहवीं रिपोर्ट में विधि आयोग के विचार।

11. अधिवक्ता अधिनियम, 1961।

IV—संशोधन की आवश्यकता नहीं

12. उच्च न्यायालय की अधिकारिता का प्रत्यावर्तन अस्वीकृत।

13. अनुशासनिक कार्यवाहियों में न्यायाधीशों का सहयोजन अस्वीकृत।

V—इंग्लैंड में स्थिति

14. इंग्लैंड में स्थिति

15. इंग्लैंड में सॉलिसिटर।

VI—भारत में सदृश विधियां

16. भारत में अन्य वृत्तियों से संबंधित सदृश विधियों में स्थिति।

17. मुम्बई, आयुर्विज्ञान अधिनियम, 1912।

VII—निष्कर्ष

18. निष्कर्ष पुनरुक्त।

19. उच्च वृत्तिक स्तर को बनाए रखने का महत्व।

20. बेकन के विचार।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—1. इंग्लैंड में विधिज्ञ के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता।

परिशिष्ट—2. चिकित्सा वृत्तियों के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता के विषय में कुछ कानूनी दृष्टांत।

I—प्रारंभिक

1. इस रिपोर्ट में इस विषय पर [illegible] है कि क्या अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अधीन अधिवक्ताओं पर अनुशासन अधिकारिता [illegible] में कोई संशोधन किए जाने की आवश्यकता है। [illegible] विषय भारत सरकार [illegible] किया। इस [illegible] का पत्र[1] का [illegible] दिया जाता है। — *[illegible] तथा प्रारंभ*

"जैसा कि सब को विदित है अधिवक्ता अधिनियम द्वारा अधिवक्ताओं पर अनुशासन अधिकारिता राज्य न्यायालयों से विधिज्ञ परिषदों को अन्तरित की गई थी। [illegible] किया जा रहा है और यह [illegible] अन्तरित की जाए या [illegible], अधिवक्ताओं के अनुशासन संबंधी मामलों में [illegible] को अधिक अधिकार देना चाहिए।

* * * * *

अतः [illegible] इस विषय पर विचार करें और सरकार को अपनी राय दें तो हम अनुगृहीत रहेंगे।"

2. इस पर विचार करने से पहले कि क्या कानून में परिवर्तन की आवश्यकता है हम प्रारम्भ में यह कहना चाहते हैं कि इस विषय के वर्तमान कानूनी उपबन्ध जैसा कि उपबन्धों के पूर्ववृत्त[2] से प्रतीत होगा, बड़े सोच विचार और चिन्तन के पश्चात् बनाए गए थे। इन में परिवर्तन को न्यायोचित करने के लिए पर्याप्त और विशेष कारण होने चाहियें। — *पूर्ववृत्त जिससे यह पता चलता है कि अधिनियम बहुत चिन्तन तथा सोच विचार के पश्चात बनाया गया।*

II—वर्तमान विधि

3. वर्तमान विधि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अध्याय 5 में अन्तर्विष्ट है जो अधिवक्ताओं के आचरण[3] जिसके अन्तर्गत अवचार संबंधी अनुशासनिक कार्यवाही भी है, के बारे में है। संक्षेप में आयोजन निम्नलिखित रूप में है। जहां किसी शिकायत की प्राप्ति पर या अन्यथा, किसी राज्य विधिज्ञ परिषद् के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उस की नामावली का कोई अधिवक्ता वृत्तिक या अन्य अवचार का दोषी रहा है वहां वह उस मामले को निपटाने के लिये, अपनी अनुशासन समिति को निर्दिष्ट करेगी[4]। राज्य विधिज्ञ परिषद् की अनुशासन समिति, सम्बद्ध अधिवक्ता तथा महाधिवक्ता को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, निम्नलिखित में से कोई आदेश दे सकेगी[5] अर्थात् :— — *वर्तमान विधि-राज्य विधिज्ञ परिषदें।*

(क) शिकायत खारिज कर देने की या, जहां राज्य विधिज्ञ परिषद् की प्रेरणा से कार्यवाहियां आरम्भ की गई हैं, वहां यह निदेश देने की कि कार्यवाहियां फाइल कर दी जाएं;

(ख) अधिवक्ता को धिग्दण्ड देने की;

(ग) अधिवक्ता को विधि-व्यवसाय से उतनी अवधि के लिए निलम्बित कर देने की, जितनी वह ठीक समझे;

(घ) अधिवक्ता का नाम, अधिवक्ताओं की राज्य नामावली में से हटा देने की।

---

1. फा॰सं॰ पत्र संख्या क 8(12) 78-वि॰का॰, दिनांक अक्तूबर 4, 1978, विधि कार्य विभाग के सचिव द्वारा भारत के विधि आयोग के सदस्य सचिव को सम्बोधित।
2. पश्चातवर्ती पैरा 7-11।
3. अधिवक्ता अधिनियम, 1961, धारा 35-44।
4. धारा 35(1)।
5. धारा 35(3) (क) से (घ)।

और अधिवक्ता [illegible] किया हो [illegible] किसी वकील या अन्य व्यक्ति द्वारा नियोजित [illegible] अपनी फीस का भाग देना [illegible] [illegible] अनुचित [illegible] आचरण[1] का या किसी आपराधिक अपराध का सिद्धदोष [illegible] के [illegible] की [illegible] के अधीन रहते[2]।

[illegible] अधिवक्ता [illegible] और [illegible] किसी न्यायालय या [illegible] के दौरान, [illegible] निलम्बित [illegible] परन्तु अन्तिम आदेश उच्च न्यायालय द्वारा ही दिया जा सकता था[3]।

8. 1926 का अधिनियम [illegible] भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिनियम, 1926 द्वारा उन अधिवक्ताओं को, जो उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय करने के अधिकार के संबंध में, उनको स्वतंत्रता दी गई जो प्लीडरों को प्राप्त नहीं थी। अधिनियम के अन्तर्गत गठित विधिज्ञ परिषद् एक निगमित निकाय[4] था जो राज्य के महाधिवक्ता, उच्च न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट चार सदस्य और अधिवक्ताओं द्वारा अपनों में से चुने दस सदस्य, द्वारा संघटित था[5]। 1926 का अधिनियम

1926 के अधिनियम के अधीन एक अधिवक्ता के विरुद्ध कदाचार की शिकायत, यदि वह उच्च न्यायालय को पेश की गई हो, विधिज्ञ परिषद् से परामर्श के पश्चात जिला न्यायाधीश द्वारा सुनी जा सकती थी; विकल्पतः मुख्य न्यायमूर्ति परिषद् के तीन से पांच सदस्यों का एक ट्रिब्यूनल नियुक्त कर सकता था। इसका निष्कर्ष उच्च न्यायालय को रिपोर्ट करना पड़ता था जो महाधिवक्ता और संबंधित अधिवक्ता को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात अन्तिम आदेश पारित करता था। यदि शिकायत खारिज न की गई हो तो अधिवक्ता को धिग्दण्ड दिया जा सकता था, निलम्बित किया जा सकता था, या उसका नाम विधिज्ञ परिषद् द्वारा रखी गई अधिवक्ताओं की नामावली से काट दिया जा सकता था[6]।

9. स्वतंत्रता के पश्चात् शीघ्र ही एक विशिष्ट समिति को अखिल भारतीय बार की आवश्यकता पर रिपोर्ट देने का कार्य सौंपा गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1953 में दी। इसने, अन्य बातों के साथ, बार को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने की सिफारिश की। अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति।

बार की स्वतंत्रता की आवश्यकता के बारे में उक्त समिति के विचार निम्नलिखित हैं :—

> "भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1933 (1933 का अधिनियम 27) के अधीन चिकित्सकों की अपनी सदा आयुर्विज्ञान परिषद् है। उसी प्रकार चार्टर्ड एकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का अधिनियम 38) के अधीन चार्टर्ड एकाउंटेंटों की भी परिषद् है। यह बात स्वतः सिद्ध है कि अगर एक व्यक्ति पर जिम्मेदारी डाली जाए तो उस की जिम्मेदारी की भावना जागृत होती है। जब तक बार के सदस्यों द्वारा चुनी प्रतिनिधि संस्था को जिम्मेवारी प्रदान न की जायेगी अखिल भारतीय बार की स्थापना निरर्थक है। जैसा कि समिति का विचार है यदि यह वांछनीय है कि भारत का राष्ट्रीय बार एक सशक्त और स्वतंत्र निकाय हो जो लोकमत को प्रभावित तथा उसका नेतृत्व करने योग्य हो, तो एक ऐसा सक्षम प्राधिकरण होना चाहिए जो अपनी अधिकारिता और शक्ति बार से ही प्राप्त करे और किसी बाह्य प्राधिकारी, चाहे वह कितना ही महान और सुप्रसिद्ध क्यों न हो, के वशवर्ती न हो।

1. विधि व्यवसायी अधिनियम, 1879, धारा 13।
2. विधि व्यवसायी अधिनियम, 1879, धारा 12।
3. विधि व्यवसाय अधिनियम, 1879, धारा 14।
4. भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिनियम (1926 का 38), धारा 3(2)।
5. भारतीय विधि परिषद् अधिनियम (1926 का 38), धारा 4(1)।
6. भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिनियम 1926, धारा 10।
7. अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति रिपोर्ट 1953 पृष्ठ 37, पैरा 80।

T-20

विधिज्ञ परिषदों को बाहरी प्रभाव या अपात्र विचारों से प्रभावित होने का जोखिम, जैसा कि आशंका की जाती है, ऐसा नहीं है जिसकी व्यवस्था न की जा सके।

चौदहवीं रिपोर्ट में विधि आयोग के विचार।

10. अखिल भारतीय बार की सिफारिश को कार्यान्वित करने की आवश्यकता पर न्यायिक प्रशासन में सुधार के विषय में 1958 में दी गई विधि आयोग की चौदहवीं रिपोर्ट में इन शब्दों में बल दिया गया था[1] :—

"47. अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति ने राज्य विधिज्ञ परिषदों और अखिल भारतीय विधिज्ञ परिषद् के गठन और शक्तियों के प्रश्न पर सुविस्तृत विचार किया और अनेक सिफारिशें कीं। अपनी सिफारिशों की विरचना करने में समिति ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया कि बार अपने व्यवसाय के मामलों में स्वतंत्र होनी चाहिये। विधिज्ञ परिषदों के गठन के बारे में इसकी सिफारिशें इसी सिद्धांत की स्वीकृति पर आधारित हैं। यह सिफारिश करते हुए कि राज्य विधिज्ञ परिषद् और अखिल भारतीय विधिज्ञ परिषद्, अन्य बातों के साथ उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा क्रमशः नामनिर्दिष्ट उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीश, से मिलकर बनेंगी; यह सुनिश्चित करने का ध्यान रखा गया था कि इस प्रकार निर्दिष्ट दो न्यायाधीश ऐसे व्यक्ति हों जो अधिवक्ता रह चुके हों ताकि न्यायाधीशों के सदस्य होने पर भी परिषद् का आन्तरिक स्वरूप बना रहे और परिषद् अनन्य रूप से अधिवक्ताओं द्वारा गठित हो।"

"48. हम स्वतंत्रता के सिद्धांत पर बल देना चाहते हैं जिसे समिति ने इस प्रकार कार्यान्वित करना चाहा। बहुत सोच-विचार के बाद हमारी राय उन न्यायाधीशों को, जो कभी भी अधिवक्ता न रहे हों, इन स्वतंत्र निकायों में लाने के निश्चित रूप से विरुद्ध है, जो पूर्णतया अपने व्यवसाय के सदस्यों द्वारा मिलकर बनने चाहियें। इस संबंध में यह ध्यान देने योग्य है कि विधिज्ञ परिषद् अधिनियम की धारा 4, जो विधिज्ञ परिषद् की संरचना को विहित करता है, उच्च न्यायालय द्वारा चार व्यक्तियों को नामनिर्दिष्ट करने की व्यवस्था करता है, जिनमें दो से अधिक उस न्यायालय के न्यायाधीश नहीं होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि समिति की यह सिफारिश, कि नामनिर्दिष्ट न्यायाधीश वह व्यक्ति हों जो अधिवक्ता रह चुके हों, सोच समझकर की गई थी ताकि न्यायाधीश जो अधिवक्ता न रह चुके हों, परिषद् के सदस्य न बन सकें। यहां यह बताना उचित होगा कि विधिज्ञ परिषद् अधिनियम की धारा 4(1)(ख) के होने पर भी कुछ राज्यों में उच्च न्यायालय ने न्यायाधीशों को विधिज्ञ परिषद् का सदस्य नामनिर्दिष्ट नहीं किया। जहां तक हमें मालूम है इन परिषदों में न्यायाधीशों के न होते हुए भी विधिज्ञ परिषदों के संतोषजनक कार्य करने के बारे में कोई शिकायत नहीं आई थी।

अतः इस से प्रतीत होता है कि इन व्यावसायिक निकायों को सम्पूर्णतया स्वतंत्र बनाने का समय आ गया है। अगर न्यायाधीशों को इन निकायों का अंग बनाना भी है तो वह अधिवक्ता-न्यायाधीश होने चाहियें।"

अधिवक्ता अधिनियम, 1961।

11. 1961 में अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति की सिफारिशों को अधिवक्ता अधिनियम, 1961 द्वारा विधायी रूप[2] दिया गया, जो इस विषय पर वर्तमान विधि है। हम इसके तात्विक उपबन्धों का संक्षिप्त विवरण पहले ही दे चुके हैं[3]।

IV—संशोधन की आवश्यकता नहीं

न्यायालय की ...ता का ...स्वीकृत।

12. उपर्युक्त[4] संक्षिप्त पूर्ववर्ती विवरण से यह प्रतीत होता है कि विधिक वृत्ति के सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही के क्षेत्र में भारत में विकास का झुकाव क्रमशः अत्यधिक

1. चौदहवीं रि.,... ... 576 अध्याय 26 पैरा 47, 48।
2. अधिवक्ता अधिनियम, 1961, धारा 34-42.
3. पूर्ववर्ती पैरा 3-8.
4. पूर्ववर्ती पैरा 7-11.

स्वतंत्रता की ओर रहा है । अत्यकाल, यह एक प्रतिगामी कदम होगा अगर इस प्रवृत्ति को उलट दिया गया और अनुशासनिक [illegible] के [illegible] विषय का प्रयत्न किया गया ।

अगर कुछ इक्का दुक्का घटनायें हुई भी हैं जिनमें व्यथित पक्षकार अनुशासनिक निकाय की कार्यवाहियों से असंतुष्ट रहे हों, तो उस स्थिति में परिवर्तन का पर्याप्त कारण नहीं समझना चाहिए । यह मानते हुए कि ऐसा अपवादिक मामला के गुणागुण से संबंधित है, [illegible] न्यायनिर्णयन की कार्यपद्धति का और प्रकट नहीं करता । एक विधि कितनी ही पूर्ण क्यों न हो, समय समय पर ऐसे अवसर अवश्य पैदा होते हैं जहां संबंधित पक्षकार उसके अधीन निहित शक्तियों के प्रयोग से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न हों । अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में समुचित मामलों में विषय को उच्चतर प्राधिकारी तक ले जाने की कार्यप्रणाली का प्रबन्ध किया गया है[1], और जहां [illegible] [illegible] हुआ हो उन मामलों का वर्तमान आयोजन के अन्तर्गत उपचार किया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय को अपील का अधिकार सुनिश्चित करता है कि वृत्तिक सत्यनिष्ठा का उच्च स्तर बनाये रखने में उच्चतम न्यायालय की समान शक्तियां दी गई हैं । समुचित मामलों में उच्चतम न्यायालय आवश्यकता अनुसार उचित आदेश पारित कर सकता है । वर्तमान प्रणाली में उलटफेर करने के लिए वास्तविक तथ्यों द्वारा प्रमाणित प्रबल कारणों के अभाव में हम इसमें कोई परिवर्तन करना उचित नहीं समझते ।

13. अतः पूर्व स्थिति को वापस लाने का प्रश्न ही नहीं उठता । पूर्व स्थिति को प्रत्यावर्तन के विकल्प में यह सुझाव[2] दिया गया है कि वर्तमान स्थिति के रहते हुए भी न्यायाधीशों को किसी न किसी रूप में अनुशासनिक समिति के साथ सम्मिलित करना चाहिए । हम इस विकल्प से भी प्रभावित नहीं हुए हैं । अगर शिकायत यह है कि वर्तमान रूप में गठित अधिकरण बहुत नरमी से काम लेते हैं तो दूसरा विकल्प अपनाने पर भी इस संभावना को पूरी तरह दूर नहीं किया जा सकता । इस तथ्य से भी अनुचित आशंका दूर होनी चाहिए कि महान्यायवादी या संबंधित महाधिवक्ता को समुचित मामलों में उच्चतम न्यायालय को अपील दाखिल करने का अधिकार दिया गया है । इसके अलावा वर्तमान पद्धति में ऐसा परिवर्तन वस्तुतः विधिज्ञ की स्वतंत्रता को कम करने वाला तथा विधान की प्रगतिशील प्रवृत्ति को उलटाने वाला होगा जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं[3] ।

अनुशासनिक कार्यवाहियों में न्यायाधीशों का सहयोजन अस्वीकृत -

साधारणतः उच्च न्यायालय के न्यायाधीश राज्य विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति के साथ सम्मिलित होने में अनिच्छुक होंगे क्योंकि राज्य अनुशासनिक समिति के आदेश के विरुद्ध अपील भारतीय विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति को हो सकेगी । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का भारतीय विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति में सम्मिलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि अनुशासनिक समिति के आदेश के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है ।

V—इंग्लैंड में स्थिति

14. यहां यह जानना रुचिकर होगा कि इंग्लैंड में बार के सदस्यों पर अनुशासन अधिकारिता का प्रयोग एक स्वतंत्र निकाय द्वारा किया जाता है । इन्ज आफ कोर्ट ने अपने सम्पूर्ण इतिहास में, छात्रों का बैरिस्टर के रूप में प्रवेश करना तथा अपने उन सदस्यों को, जो वृत्तिक अवचार के दोषी ठहराये गए हों, निर्वासित करने का एकमात्र अधिकार अपने पास रखा है[4,5] ।

इंग्लैंड में स्थिति

15. इंग्लैंड में सालिसिटरों पर अनुशासन विधि सोसाइटी के परिषद् के सदस्यों में से मास्टर आफ रोल्ज द्वारा गठित अनुशासनिक समिति के हाथों में है । समिति शक्ति रखती है कि

इंग्लैंड में सालिसिटर

1. पूर्ववर्ती, पेरा 5-6, अधिवक्ता अधिनियम, 1961, धारा 38.
2. पूर्ववर्ती पैरा 1.
3. पूर्ववर्ती पैरा 12.
4. रैडक्लिफ व क्रास, द इंग्लिश लीगल सिस्टम (1971), पृष्ठ 392.
5. विवरण के लिए, देखिए परिशिष्ट 1.

एक सॉलिसिटर को नामावली से हटा दे[1], उसे विधि-व्यवसाय से निलम्बित कर दे या 500 पाउंड तक जुर्माना अधिरोपित कर दे। इस के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील की जा सकती है[2]।

VI—भारत में सदृश विधियां

भारत में अन्य वृत्तियों के सम्बन्ध में सदृश विधियों का विवेचन

16. हम यह कहना चाहते हैं कि हमने अन्य वित्तवृत्तियों के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता के बारे में भारतीय कानूनी दृष्टांतों का अध्ययन किया है। इनमें से अधिकतर उपबंध ऐसी अधिकारिता स्वतन्त्र निकायों में निहित करते हैं जो उस व्यवसाय के सदस्यों द्वारा गठित हों। हमने कुछ अधिनियमों के सुसंगत उपबन्धों का सारांश परिशिष्ट[3] में दिया है, जिसे तुलना की सुविधा के लिए चार्ट के रूप में तैयार किया गया है।

मुम्बई आयुर्विज्ञान अधिनियम, 1912।

17. इस संदर्भ में हम चिकित्सा वृत्ति विषयक स्थानीय विधान का भी उल्लेख करते हैं जो "बम्बई 1912" द्वारा स्वतंत्रता के सिद्धांत की स्वीकृति का दृष्टांत देता है। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में अर्हित व्यवसायियों का रजिस्ट्रीकरण पूर्व मुम्बई राज्य में मुम्बई आयुर्विज्ञान अधिनियम, 1912 के अधिनियमित होने पर आरम्भ हुआ।

दूसरे प्रान्तों में इस विषय पर समरूप अधिनियम थे। तत्समय यथा प्रवृत्त मुम्बई अधिनियम एक आयुर्विज्ञान परिषद् की व्यवस्था करता है, जो, राज्य सरकार के पांच नामनिर्देशितों, राज्य में विश्वविद्यालयों के चिकित्सा संकाय तथा चिकित्सक और सर्जन महाविद्यालय मुम्बई की शासकीय निकाय द्वारा निर्वाचित तीन व्यक्ति, तथा रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायियों द्वारा निर्वाचित छह व्यक्तियों से गठित है[4]।

इस अधिनियम के अधीन गठित मुम्बई आयुर्विज्ञान परिषद् कदाचार के लिए एक चिकित्सक का नाम, जांच के पश्चात्, रजिस्टर से हटा सकती है[5]।

VII—निष्कर्ष

निष्कर्ष पुनरुक्त

18. उपर्युक्त विचार की गई स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम अपने निष्कर्ष[6] को दोहराते हैं कि विधि में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

उच्च वृत्तिक स्तर को बनाए रखने का महत्व।

19. हमारा विश्वास है कि हम ने उन सब बातों को ध्यान में रखा है जो निर्देशित विषयों से सुसंगत हैं। जो हमने कहा है उससे हमारा विधि व्यवसाय या किसी अन्य वित्तवृत्ति में उच्च नैतिक स्तर बनाये रखने को कम करने का आशय नहीं है। भारतीय परम्परा आशा करती है कि हर पुरुष तथा स्त्री अपने अपनाए हुए जीवन के क्षेत्र में अपना कर्तव्य पालन सर्वोत्तम योग्यता से करें। महाभारत में वणिक तुलाधार द्वारा तपस्वी जाजलि[7] को दी गई धर्म की परिभाषा से उच्च नैतिकता की भावना प्रकट होती है।

> सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
> कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले—

'हे जाजलि, जो सब जीवों का सुहृद होता, और मन, वाणी तथा कर्म द्वारा सदा सब के हित में लगा रहता है, वही वास्तव में धर्म को जानता है।'

बेकन के विचार।

20. पाश्चात्य देशों में समरूप भाव बेकन द्वारा ऐसी भाषा में अभिव्यक्त किए गए, जो शताब्दियों के व्यतिक्रम के कारण कुछ अपरिचित प्रतीत होने पर भी उद्धरणीय हैं।

1. सॉलिसिटर अधिनियम, 1957, धारा 46 और 48.
2. विल्सन, केसिज एण्ड मैटिरियल्स फार दि इंग्लिश लीगल सिस्टम (1973), पृष्ठ 141.
3. देखिए परिशिष्ट 2.
4. मुम्बई आयुर्विज्ञान अधिनियम, 1912 (1912 का 6), धारा 2(2).
5. मुम्बई आयुर्विज्ञान अधिनियम, 1912 (1912 का 6), धारा 9.
6. पूर्ववर्ती पैरा 12-13.
7. महाभारत, शान्ति पर्व 254.9 (भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट संस्करण), स्वामी रंगानाथानन्द द्वारा इटर्नल वैल्यूज फार ए चेंजिंग सोसायटी (1971) में उद्धृत, पृष्ठ 537.

[illegible] के [illegible] [illegible] व्यवसाय [illegible] [illegible] [illegible] भाषण में इस बात पर [illegible] किया है :—

"मैं हर व्यक्ति को उसके व्यवसाय के प्रति ऋणी मानता हूं। उससे चूंकि व्यक्ति स्वभावतः मान्यता और लाभ प्राप्त करना चाहते हैं अतः उन्हें चाहिए कि वह कर्तव्य के तौर पर, प्रतिदान के रूप में, उस की सहायता और [illegible] के लिए प्रयास करें। इस ऋण की कुछ हद तक पूर्ति तो व्यवसाय के [illegible] और उदार आचरण से हो जाती है जब लोगों के मन में यह आस्था हो कि वह किसी भ्रष्ट और अनुचित आचार का आश्रय नहीं लेंगे तथा उन कदाचारों से मुक्त रहेंगे जिनसे उसका संक्रमित होना पूर्वाश्रित है। किन्तु इस प्रकार बहुत कुछ निष्पन्न हो जाता है यदि कोई व्यक्ति उस विज्ञान की जड़ों और आधार तक पहुंचे और उन्हें मजबूत कर सके। इस प्रकार वह न केवल इसकी कीर्ति और गौरव की वृद्धि करता है अपितु उसे अधिक परिपूर्ण और सारवान भी बनाता है।[1]"

एच० आर० खन्ना	अध्यक्ष
एस० एन० शंकर	सदस्य
टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर	सदस्य
पी० एम० बख्शी	सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
30 अक्तूबर, 1979

परिशिष्ट 1

इंग्लैंड में विधिज्ञ के सदस्यों पर अनुशासन अधिकारिता

इन्स आफ कोर्ट तथा सिनेट के अनुशासनिक कर्तव्य।

इंग्लैंड में एक व्यक्ति का (विधि के) छात्र के रूप में, और जब वह योग्य हो, बैरिस्टर के रूप में, प्रवेश अभी भी इन्ज आफ कोर्ट की जिम्मेदारी है। इन्ज आफ कोर्ट अनुशासन को बनाये रखने तथा बैरिस्टरों द्वारा वृत्तिक आचरण और शिष्टाचार के नियमों का अनुपालन की भी जिम्मेदार है। इन्ज ने अपनी कुछ शक्तियों का प्रयोग प्रत्यायोजित किया है। उदाहरणार्थ विधि छात्रों को शिक्षा तथा परीक्षा की अपनी जिम्मेदारी एक विधिक शिक्षा परिषद् को प्रत्यायोजित कर दी है। 1967 में इन्ज ने अपनी अनुशासनिक शक्ति चारों इन्ज की एक सिनेट को प्रत्यायोजित कर दी जिसकी बार संबंधी विस्तृत प्रशासनिक जिम्मेदारियां हैं[2]।

अनुशासनिक अधिकारिता की स्थिति के बारे में हाल्सबरी ने विस्तृत वर्णन[4] निम्नलिखित रूप से किया है :—

"उन के घरेलू मामलों के अतिरिक्त, चारों इन्ज आफ कोर्ट की अनुशासनिक शक्तियां, बैंच द्वारा चारों इन्ज आफ कोर्ट की सिनेट को प्रत्यायोजित कर दी गई हैं[5]। वृत्तिक अवचार या ऐसे आचरण जो एक बैरिस्टर के अशोभनीय व्यवहार के बारे में या एक बैरिस्टर के विरुद्ध शिकायतें विधिज्ञ परिषद् या अन्य संस्थाओं या व्यक्तियों से सिनेट को प्राप्त होती हैं उन पर सिनेट की शिकायत समिति द्वारा विचार किया जाता है[6]।

1. बैकन—द मैक्सिमस आफ ला का प्राक्कथन, सर ओवेन डिक्सन द्वारा न्याय उपचार में उद्धृत (1953) में मलबार्न विश्वविद्यालय के विधि छात्रों को दिया गया उद्घाटन-भाषण द जेस्टिंग पिलेट 129-134
2. विल्सन, केसिज एण्ड मैटीरियल फार द इंगलिश लीगल सिस्टम (1973), पृष्ठ 16।
3. देखिए रि० एस० (ए बैरिस्टर) (1969) 1 ए०ई०आर० 949 जहां अधिकारिता पूर्ण रूप से दी गई है।
4. हैल्सबरी चौथा संस्करण जिल्द 3, पृष्ठ 615, 616, पैरा 1134.
5. चारों इन्ज आफ कोर्ट की सिनेट के विनियम (1970-71), विनियम 13.
6. सिनेट शिकायत समिति के स्थायी आदेश (1967), आदेश 4।

ट-115

"किसी [illegible] के [illegible] से समिति निर्णय कर सकती है कि कोई अनुशासनिक कार्यवाही न की जाये, या सम्बंधित बैरिस्टर को इन के कोषपाल को शिकायत [illegible] दी जाए, या वह सिनेट की अनुशासनिक समिति के सामने एक आरोप या आरोपों का विषय हो सकता । समिति में [illegible] एक न्यायाधीश भी हो सकता है परन्तु अन्यथा वह इन [illegible] करने वाले बैरिस्टरों से गठित होती है जो सिनेट के सदस्य हैं[2] । जब यह [illegible] के रूप में कार्य करती है तो अनुशासनिक समिति [illegible] सदस्यों से गठित होती है[3] ।

* * *

जब अनुशासनिक समिति को किसी मामले की रिपोर्ट की जाती है तो बैरिस्टर के इनकी सहमति के साथ, आरोप या आरोपों को बनाने और अनुशासनिक समिति [illegible] के लिये, कार्यवाही की निवृत्ति के लिए आरोप समिति जिम्मेदार है ।

* * * * *

"अनुशासनिक समिति द्वारा जो दण्डादेश अधिरोपित किये जा सकते हैं वह है विवर्जित कर देना, निलम्बित कर देना, सशर्त या अन्यथा, फीस को छोड़ देने या वापस कर देने का आदेश या भिड़की देना" । दण्डादेश, अगर कोई हो, सिनेट के अध्यक्ष द्वारा बैरिस्टर के सम्बंधित इन के कोषपाल को अवश्य अधिसूचित किया जाना चाहिए और सिनेट द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार इन को इसे कार्यान्वित करना पड़ता है[5] । उन मामलों में जहां विवर्जित करने या निलम्बित करने का दण्डादेश दिया गया है, आरोप निष्कर्ष तथा दण्डादेश बैरिस्टर की इन्ज द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं । दूसरे मामलों में प्रकाशन तब किया जाता है यदि संबंधित बैरिस्टर ऐसा अनुरोध करे या सिनेट का अध्यक्ष ऐसी सिफारिश करे ; जहां आरोप या आरोपों को खारिज कर दिया गया है तो आरोप और निष्कर्ष प्रकाशित नहीं किए जाते जब तक बैरिस्टर ऐसा अनुरोध न करे[6] ।

"अनुशासनिक समिति के विनिश्चय लार्ड चांसलर तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को, जब वह एक घरेलू ट्रिब्यूनल के रूप में कार्य करते हैं, अपीलनीय हैं[7] । न्यायाधीश जब इस हैसियत से कार्य करते हैं तो उन्हें 'परिदर्शक' कहा जाता है ।"

---

1. सिनेट [illegible] समिति के स्थायी आदेश (1967), आदेश [illegible]
2. चारों इन्ज आफ कोर्ट और सिनेट के अधिनियम (1970-71); विनियम 13 (ख). विधि की साधारण परिषद् का वार्षिक विवरण (1966), पृष्ठ 42.
3. सिनेट की अनुशासनिक समिति के स्थायी आदेश (1971), [illegible] आदेश 1.
4. सिनेट की अनुशासनिक समिति के स्थायी आदेश आदेश 10.
5. चारों इन्ज आफ कोर्ट के सिनेट अधिनियम (1969), विनियम 14.
6. सिनेट की अनुशासनिक समिति के स्थायी आदेश (1971), आदेश 11
7. सिनेट का वार्षिक विवरण (1966-67), पृष्ठ 7

परिशिष्ट 2

विधायी [illegible] के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता के विषय में कुछ कानूनी दृष्टांत

अधिनियम का नाम	धारा	अनुशासनिक निकाय	दण्ड अधिरोपित करने की शक्ति	अपील
[illegible] अधिनियम, 1948	41	राज्य परिषद्	राज्य परिषद् द्वारा	राज्य सरकार को अपील
[illegible] 1948	36	कार्यकारिणी समिति	कार्यकारिणी समिति द्वारा दिया गया आदेश राज्य परिषद् की पुष्टि के अध्यधीन है ।	परिषद् के आदेश से राज्य सरकार को अपील की जा सकेगी ।
[illegible] अधिनियम, 1949	21(4)(क) और 22क/21 (4)(ख) और 22क ।	चार्टर्ड एकाउंटेंट संस्थान की परिषद्	(1) सदस्य को धिग्दण्ड (2) पांच वर्ष तक की कालावधि के लिये रजिस्टर से नाम हटाना ।	उच्च न्यायालय को अपील उच्च न्यायालय को अपील
[illegible] अधिनियम, 1949 [illegible] अधिनियम, 1949	21(4), [illegible], और 21(6)	चार्टर्ड एकाउंटेंट संस्थान की परिषद्	अगर हटाया जाना [illegible] वर्ष के लिए या स्थायी है, तो मामला उच्च न्यायालय को भेजा जाएगा ।	उच्च न्यायालय को अपील ।
[illegible] आयुर्विज्ञान परिषद् [illegible], 1956	24(1)	भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्	भारतीय चिकित्सक रजिस्टर से किसी व्यक्ति का नाम हटाने का आदेश भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् द्वारा दिया जा सकता है, यदि उस का नाम चिकित्सा व्यवसायी रजिस्ट्रीकरण राज्य विधि के अधीन रखे गए राज्य चिकित्सक रजिस्टर से हटा दिया गया हो ।	वृत्तिक अवचार के कारण राज्य चिकित्सक रजिस्टर से नाम हटाए जाने पर केन्द्रीय सरकार को अपील हो सकती है ।
[illegible] अधिनियम, 1952	10(घ)	सरकार	विहित जांच के पश्चात, वृत्तिक या अन्य अवचार के कारण हटाना	कोई अपील नहीं
[illegible] संकर्म एकाउंटेंट [illegible], 1959	20, 21	संस्थान की परिषद्	सारतः वैसा ही जैसा कि चार्टर्ड एकाउंटेंट के विषय में	सारतः वैसा ही जैसा कि चार्टर्ड एकाउंटेंट के विषय में
[illegible] चिकित्सा केन्द्रीय [illegible] अधिनियम, 1970	26, 27	भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्	केन्द्रीय परिषद् द्वारा रजिस्टर से नाम का हटाया जाना	अपील भारत सरकार को हो सकती है (धारा 27(2) जब एक व्यक्ति का नाम अपेक्षित चिकित्सीय अर्हता से सम्पन्न न होने के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से राज्य रजिस्टर से हटा दिया गया हो ।
[illegible] अधिनियम, 1972	29	परिषद्	परिषद् द्वारा	अपील का कोई उपबन्ध नहीं ।